भारत में ब्रिटिश शासन का आर्थिक प्रभाव।

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद से भारतीय समाज के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्रों में कई परिवर्तन हुए हैं।

1. पारंपरिक अर्थव्यवस्था में उथल-पुथल

भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में तब्दील हो गई, जिसकी प्रकृति और संरचना ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरूरतों के अनुसार निर्धारित की गई। इस संबंध में भारत पर ब्रिटिश विजय अन्य सभी विदेशी विजयों से अलग थी।

पिछले विजेताओं ने भारतीय राजनीतिक अधिकारियों को पदच्युत कर दिया था, लेकिन देश की आर्थिक व्यवस्था में कोई बुनियादी बदलाव नहीं किया था; इसके बजाय, वे धीरे-धीरे भारतीय जीवन के राजनीतिक और आर्थिक ताने-बाने में समाहित हो गए थे। किसान, कारीगर और व्यापारी के लिए पारंपरिक जीवन शैली को बनाए रखा गया था।

मौलिक आर्थिक मॉडल-आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था-को बरकरार रखा गया था। शासकों के साथ केवल एक चीज बदली थी, वह थी किसानों से अधिशेष लेने के लिए जिम्मेदार लोग। हालाँकि, ग्रेट ब्रिटेन के विजेता पूरी तरह से अलग थे। उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के स्थापित ढांचे को पूरी तरह से उलट दिया।

इसके अलावा, वे कभी भी भारतीय संस्कृति में एकीकृत नहीं हुए। वे देश में विदेशी के रूप में रहते रहे, इसके संसाधनों का लाभ उठाते रहे और इसकी संपत्ति को श्रद्धांजलि के रूप में लेते रहे। ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के लिए भारत की इस आर्थिक अधीनता के कई अनपेक्षित परिणाम हुए।

2. कारीगरों और शिल्पकारों का विनाश:

शहरी हस्तशिल्प क्षेत्र, जिसने सदियों से भारत का नाम पूरी सभ्य दुनिया के बाजारों में गुणवत्ता का पर्याय बना रखा था, अचानक और तेज़ी से ढह गया। ब्रिटेन के सस्ते आयातित मशीन-निर्मित सामानों से प्रतिस्पर्धा इस पतन का एक प्रमुख कारण था।

साक्ष्य बताते हैं कि अंग्रेजों ने 1813 के बाद भारत पर एकतरफा मुक्त व्यापार नीति लागू की और उसके बाद ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं, विशेष रूप से सूती वस्त्रों पर आक्रमण किया गया। पुराने तरीकों से उत्पादित भारतीय उत्पाद शक्तिशाली भाप से चलने वाली मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर निर्मित वस्तुओं का मुकाबला नहीं कर सकते थे।

रेलवे के निर्माण के बाद भारतीय उद्योगों, खासकर ग्रामीण कारीगर उद्योगों का पतन तेज हो गया। ब्रिटिश निर्माता देश के सबसे अलग-थलग गांवों तक पहुंच बनाने में सफल रहे और स्थानीय पारंपरिक उद्योगों को विस्थापित कर दिया। स्टील की रेल ने अलग-थलग आत्मनिर्भर गांव के कवच को भेद दिया और उसका जीवन रक्त खत्म हो गया।

सबसे ज़्यादा प्रभावित उद्योग वे थे जो कपास की कताई और बुनाई से जुड़े थे। लोहा, मिट्टी के बर्तन, कांच, कागज़, धातु, बंदूकें, शिपिंग, तेल निकालने, चमड़ा बनाने और रंगाई के उद्योगों का भी यही हाल हुआ। रेशम और ऊनी कपड़ों का भी हाल कुछ बेहतर नहीं रहा।

विदेशी वस्तुओं के आयात के अलावा, ब्रिटिश विजय के अन्य प्रभावों ने भी भारतीय उद्योगों के पतन में भूमिका निभाई। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके कर्मचारियों द्वारा उन पर किए गए उत्पीड़न के कारण कई बंगाली कारीगरों को अपने पारंपरिक व्यवसाय छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। उन्हें अपने सामान को बाजार मूल्य से कम पर बेचने और अपनी सेवाओं के लिए मौजूदा दर से कम भुगतान करने के लिए मजबूर होना पड़ा। आम तौर पर, कंपनी द्वारा उनके निर्यात को प्रोत्साहित करने से भारतीय हस्तशिल्प को लाभ होता, लेकिन इस उत्पीड़न का विपरीत प्रभाव पड़ा।

ब्रिटेन में आधुनिक विनिर्माण उद्योगों के विकास तथा अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान ब्रिटेन और यूरोप में भारतीय वस्तुओं के आयात पर लगाए गए उच्च आयात शुल्क और अन्य प्रतिबंधों के परिणामस्वरूप 1820 के बाद यूरोपीय बाजार भारतीय निर्माताओं के लिए लगभग बंद हो गए।

इसके अलावा, गांवों पर ब्रिटिश कब्जे ने स्थानीय अर्थव्यवस्था के नाजुक संतुलन को बिगाड़ दिया। ग्रामीण अर्थव्यवस्था की खुद को बनाए रखने की क्षमता धीरे-धीरे नष्ट हो गई क्योंकि ग्रामीण शिल्प धीरे-धीरे लुप्त हो गए, जिससे कृषि और घरेलू उद्योग के बीच संबंध टूट गया।

भारत वास्तव में औद्योगिक ब्रिटेन की कृषि उपनिवेश के रूप में विकसित हुआ, जो अपने उद्योगों के लिए कच्चे माल के लिए इस पर निर्भर था। सूती कपड़ा उद्योग ही वह जगह थी जहाँ परिवर्तन सबसे अधिक स्पष्ट था। सदियों से कपास के सामान का दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक होने के बावजूद, भारत अब ब्रिटिश कपास के सामान का आयातक और कच्चे कपास का निर्यातक दोनों बन गया था।

पुराने ज़मींदारों का विनाश और नई ज़मींदारी का उदय :

ब्रिटिश शासन के पहले कुछ दशकों के दौरान बंगाल और मद्रास में अधिकांश पुराने ज़मींदारों को नष्ट कर दिया गया था। यह विशेष रूप से तब सच था जब वॉरेन हेस्टिंग्स ने

कर संग्रह के अधिकारों को सबसे अधिक बोली लगाने वालों को नीलाम करने की नीति अपनाई थी। इसी तरह के परिणाम शुरू में 1793 के स्थायी बंदोबस्त के साथ देखे गए थे।

पहले कुछ वर्षों में, भारी भू-राजस्व बोझ—सरकार किराए का दस-ग्यारहवाँ हिस्सा मांगती थी—और संग्रह का सख्त कानून, जिसके तहत राजस्व भुगतान में देरी की स्थिति में ज़मींदारी सम्पदा को बेरहमी से बेचना पड़ता था, ने तबाही मचा दी। कई बंगाली ज़मींदार पूरी तरह से दिवालिया हो गए और उन्हें अपने ज़मींदारी अधिकार बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा।

इन नए मकान मालिकों ने जबरन किराया वसूलना शुरू कर दिया और किरायेदारों को बेदखल करना शुरू कर दिया, क्योंकि वे पूरी तरह से बेईमान थे और उनके प्रति सहानुभूति का अभाव था।

उत्तर प्रदेश में अस्थायी ज़मींदारी बंदोबस्त और उत्तरी मद्रास में स्थायी बंदोबस्त दोनों ही पड़ोसी ज़मींदारों के लिए कठोर थे। हालाँकि, ज़मींदारों की स्थिति जल्द ही नाटकीय रूप से बेहतर हो गई।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ज़मींदारों और जमींदारों का राजनीतिक प्रभाव उनके उत्थान और विस्तार का बहुत नकारात्मक परिणाम था। उनमें से कई संरक्षित राज्यों के राजकुमारों के साथ मिलकर विदेशी शासकों को राजनीतिक रूप से समर्थन देने और उभरते राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध करने लगे। उन्होंने यह महसूस करने के बाद कि वे अपने अस्तित्व के लिए ब्रिटिश शासन पर निर्भर हैं, ब्रिटिश शासन को बनाए रखने और जारी रखने के लिए एक ठोस प्रयास किया।